इसकी रजिस्ट्री ऐक्ट २५ सन् १८६७ के अनुसार कराईगई है
अन्य कोई न छापै

ॐ

ऋगादि भाष्य भूमिका

प्रथमोऽङ्कः

श्रीयुत स्वामी दयान[illegible]

निर्मित[illegible]

———000———

श्रीमहान्त वृह्मकुशलोदास[illegible]

निर्मितः

[illegible]नन्द द[illegible]
208
[illegible]विद्यालय, [illegible]

आर्यदर्पण यन्त्रालय शाहजहांपुर में
मुंशी बखतावरसिंह के प्रबन्ध से मुद्रित हुआ

सम्वत् १९४०

मूल्य ।/)

प्रार्थना

—:०००:—

अब सम्पूर्ण ... ।ऽवलम्बी विद्वज्जन तथा सज्जन पुरुष श्री ... स जस्य महाशयों ... विनय प्रार्थना है कि यह ग्रन्थ बड़े ... म बनायागया है ... मनुस्मृति और महाभारतादिकों के प्रमाण न दियेगये हैं, केव ... तथा अथर्व इन चारों वेदों की संहिता त ऐत्तरेय शतपथादि ... दि जो स्वामी जी का मन्तव्य सच्छास्त्र हैं, उन्ह ... दियेगये हैं, इससे कृ दृष्टि से ध्यान देकर इस ग्रन्थ का ... रे परिश्रम को सफ करें, और जो कहीं जीव धर्म वा प्रमादादि करके इस ग्रन्थ के कि ... में न्यूनता रहगई हो तो कृपा करके पत्रादि द्वारा सूचित करें, औ जो कहीं भ्रम करके वा किसी और प्रकार से कहीं अयुक्त लिखागया तो कृपा करके क्षमाकरें ।

अलमति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु

इति शम्

श्री महन्त ब्रह्मकुशलोदासीन

धर्म्मशाला विहारीपुर

बरेली

सम्वत् १९४७ वि०

ओ३म्

सत्यमेव जयति नानृतम्

निवेदनम्

विदित हो कि सम्पूर्ण ऋग्वेदादि सच्छास्त्रोक्त धर्मावलंबी विद्वज्जन तथा सज्जन पुरुष और आर्य्यसमाजस्थ महाशयों को जो कि 'श्रीयुत् स्वामी दयानन्द सरस्वती' जीने अपने 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' ग्रन्थ में सृष्टि की आदि में ब्रह्मा जीसे वेदों का प्रचार होना और इन्द्रादि देवताओं का मानना, तथा मूर्ति पूजन और गंगादि तीर्थों का स्नानादि करना, और मत्स्य कूर्मादि अवतारों का होना, तथा मरेहुए पितरों का श्राद्ध और तर्प्पणादि करना, तथा और अनेक प्रकार के कर्मों का निषेध लिखा है सो स्वामी जी ने इस संसार में वेदाऽध्ययन की प्रवृत्ति के अर्थ केवल विद्वज्जनों के खिझाने ही के लिये लिखा है, वास्तव में नहीं', सो इसी अभिप्राय के प्रकाश करने के लिये वैदिक मत तत्पर परम धार्मिक श्रीमान् बाबू त्रिवेणी सहाय वकील अदालत दीवानी बरेली की प्रार्थना से 'श्री महन्त ब्रह्मकुशल उदासीन जी ने' यह 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकेन्दु' नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ बनाया है, सो इस समय तक इस ग्रन्थ के आठ प्रकरण पूर्ण होचुके हैं सो उनका सिद्धांत यह है कि—

१—वेदोत्पत्ति विषय—इसमें सृष्टि की आदि में श्री ब्रह्मा जी से ही वेदों का प्रचार निरूपण है ।

२—देवता विषय—इसमें इन्द्रादि देवताओं का सत्यत्व और पूजनादि निरूपण है ।

३—देवता सम्बन्ध विषय—इसमें देवताओंकी उत्पत्ति और सम्बन्धोंका निरूपण है ।

४—अवतार विषय—इसमें मत्स्य कूर्मादि दश अवतारों का तथा अन्य देवताओं के अवतारों का निरूपण है ।

५—प्रतिमा पूजन विषय—इसमें देवताओं की प्रतिमाओं का तथा शिव लिंगादि और वृक्षों का पूजन तथा गंगादि तीर्थों का निरूपण है ।

६—पुराण विषय—इसमें पुराणों की सतयता का निरूपण है ।

७—पितृ विषय—इसमें मरेहुए पितरों के श्राद्ध और तर्प्पणादि निरूपण हैं ।

८—नियोग विषय—इसमें ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों की स्त्रियों के लिये नियोग विधि का निषेध निरूपण है ।

☞ और अभी आगे ईश्वर गुरु तथा महात्मा और विद्वज्जनों की कृपा से अन्य विषयों पर भी रचना होरही है निश्चय है कि ईश्वर इस शुद्ध सङ्कल्प को निर्विघ्नता पूर्वक अवश्य ही पूर्ण करेंगे । शम् इति

ॐ

ओम् नमः श्रीगुरुदेवाय

मङ्गलाचरणम्

——:0:0:0:——

आद्याभृत्तनयापतिर्नवमजन्दृग्भू तृतीयेनयः ।
षष्ठस्यालय मानिनाय सततन्तुर्याशनाभूषणः ॥
भूतेशोऽष्टम भूतिभूति लकितो येनद्वितीयेनजो ।
व्याप्तः पञ्चमवत्स सप्तमपटः पायाद्पायाज्जगत् ॥

भाषार्थ

अथतावत् इस ऋग्वेदादिभाष्य भूमिकेन्दु संज्ञक ग्रन्थ की निर्विघ्न परिसमाप्ति और प्रचार के लिये (पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालोदिगात्मा मन इति द्रव्याणि) इसकणादमुनि प्रणीत वैशेषिक शास्त्र के प्रथमाध्याय प्रथमान्हिक के पञ्चम सूत्रोक्त नवद्रव्यों के कारण भूत और तन्मय ऐसे जो महादेव प्रवल शत्रु संहारकारी तिनका वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण करते हैं (आद्याभृत्तनयापतिरित्यादिना) पृथिवी १ जल २ तेज ३ वायु ४ आकाश ५ काल ६ दिक् ७ आत्मा ८ मन ९ इन नव द्रव्यों में जो (आद्या) पृथिवी है तिसको जो विभर्ति धारण करे सो कहावे (आद्याभृत्) अर्थात् हिमालय तिसकी जो तनया पुत्री अर्थात् पार्वती तिसके जो पति महादेव सो कहावें (आद्याभृत्तनयापतिः) फिर कैसे हैं कि (यः) जो महादेव (नवमजं) नवम जो है मन तिससे उत्पन्न हुआ जो कामदेव जो कि मनोज नाम से प्रसिद्ध है तिसको (दृग्भू तृतीयेन) दृग् जो मस्तक में स्थित है तीसरा नेत्र तिससे (भू) उत्पन्न जो प्रलय काल में विश्व का संहारकारी (तृतीय) अर्थात् अग्नि तिस करके (षष्ठस्य) छठा जो है (काल) अर्थात् यमराज तिसके (आलयं) घर को (आनिनाय) अर्थात् भस्म करके प्राप्त करते भये । फिर कैसे हैं महादेव कि (सततं तुर्याशना भूषणः) निरन्तर तुर्य्य जो चौथा अर्थात् वायु वही है अशन भोजन जिनका ऐसे जो सर्प सो हैं भूषण जिनके । और फिर कैसे हैं महादेव (भूतेशः) भूत जो हैं संपूर्ण चराचर तिनके ईश अर्थात् स्वामी हैं । और फिर कैसे हैं महादेव कि (अष्टम भूति भूतिलकितः) अष्टम जो है आत्मा तिससे भूति अर्थात् उत्पन्न जो मन तिससे (भू) उत्पन्न हुआ जो चन्द्रमा तिस करके तिलकित हैं, अ-

र्थात् तिस चन्द्रमा को मस्तक में तिलकवत् धारण किये हुए हैं। जो कहो कि (चन्द्रमा मनसोजातः) इस सहस्र शीर्षोक्त मन्त्र के प्रमाण से मन से चन्द्रमा का उत्पन्न होना प्रसिद्ध है। और तैसे ही मन से कामदेव का भी उत्पन्न होना प्रसिद्ध है इसी से काम को मनोज कहते हैं और उसी को शत्रु समझकर अपने तीसरे नेत्र से अग्नि को उत्पन्न करके भस्म किया है फिर उसी के भ्राता को मस्तक में क्यों धारण किया? इसका उत्तर कहते हैं कि (येन-द्वितीयेनजो) जिस करके वह चन्द्रमा द्वितीयेनज है अर्थात् द्वितीय जो हैं जल तिनका जो (इन) अर्थात् स्वामी ऐसा जो समुद्र तिससे उत्पन्न हुआ है तो फिर जन्मान्तर धारण के कारण से कामदेव का भ्राता नहीं रहा यही समझ कर महादेव जी ने चन्द्रमा को मस्तक में धारण किया है। और फिर कैसे हैं महादेव कि (व्याप्तः पञ्चमवत्) पञ्चम जो है आकाश तिसकी समान व्याप्त हैं अर्थात् सर्वव्यापी हैं। और फिर कैसे हैं महादेव कि (सप्तम पटः) सप्तम जो है दिक् वही हैं पट अर्थात् वस्त्र जिनके, अर्थात् दिगम्बर हैं। ऐसे जो महादेव सो (पायाद्द् पायाज्जगत्) संपूर्ण जगत् का अपाय जो नाश तिससे (पायात्) रक्षा करें। इतरार्थः

सूर्य्यासोमौचक्षुषी द्यौश्च शीर्षं स्पृथ्वी पादौ नाभिर्देशोनभश्च। सृष्टिर्वोधः संहृतिर्यस्य निद्रावाक्यं वेदस्तमजेऽभीष्टसिद्ध्यै ॥ १ ॥ तत्केनोक्त गुरोर्भर्गो* वरेण्य मनिशम्मुदा। चिन्तयामोऽर्थ धर्मादौ धियो योनः प्रचोदयात् ॥ २ ॥ अस्ति पृथिव्यान्नगरी प्रसिद्धा श्रीराम गङ्गोत्तर कूल भागे। नाम्ना वरेलीति रुहेलखण्डे सद्धर्म निष्ठैः सुजनैर्मनोज्ञा ॥३॥ बुधायच बाबू त्रिवेणीसहायो वकीलः परम्धर्मनिष्ठःसुशीलः। स्वयं सद्वकीलान्समादाय योसौ चिरान्नष्ट भूमिं विजित्यार्पयन्माम् ॥ ४ ॥ स एक इत्थं समुवाच धीरः पुराण गाथा प्रतिमार्चनञ्च। सनातनं धर्म वदन्ति वृद्धा अहोविनिन्दन्ति तदेव नव्याः ॥ ५ ॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती यो वेदार्थ

---

* तत् तस्य। केनोपनिषत्प्रतिपाद्यस्य गुरोर्ब्रह्मणः (सपूर्वेषामपि गुरुः कालेनानव च्छेदात्) इति पातं० यो० सू० पा० १ सू० २६ ॥ भर्गस्तेजः

विद्भूमि तले प्रसिद्धः । स्मृत्यागमेतिह्यपुराणकल्पान्सोप्योह पोखण्डि विनिर्मितान्वै ॥६॥ त्वं सर्ववेत्तासि विचक्षणोसि पृच्छाम्यतस्त्वा मुभयोर्विचार्य्य । वेदाविरुद्धं यदि ह्यास्तितन्मे ब्रूहिप्रभो लोक हिताय तूर्णम् ॥७॥ इत्यङ्गतार्थं परिवं हित माप्त वाक्य प्रामाण्य युक्त मति गुह्यतमं बरिष्ठम् । सम्पूज्य प्रश्नमधिगम्य तदीय तत्वं नत्वागुरुं सुमतिदं यतितुं प्रवृत्तः ॥८॥ ऋगादि भाष्यभूमिकां विलोक्य स्वामि निर्मितान्तदीय मान्तरीयकं विचार्य्यतावदेवतु । ऋगादि भाष्यभूमि-केन्दु संज्ञकंत्विमम्बुधाः । करोम्यहम्प्रबन्धमङ्गतं जगद्धिता-यवै ॥ ९ ॥ रसाब्ध्यङ्केन्दौसन्मधुसित नवम्यां कुजदिने । त्रिवेणीसाह्वाये रमलहृदयैः पृष्टमखिलम् ॥ ऋगादीनाम्मन्त्रैः शतपथ निरुक्तादिभिरलम् । प्रबन्धङ्कुर्वेऽहम्बुधजन मुदे ब्रह्मकुशलः ॥ १० ॥

ओ३म्

नमो ब्रह्मणे धारणं मे अस्त्वनिराकरणं धारयिता भूयासं कर्णयोः श्रुतम्माच्योढ्वं ममाऽमुष्य ओम् ॥ तै॰आ॰ प्र॰१०अनु॰ ८ मं॰ १ ॥ ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ तै॰ आ॰ प्र॰ ४ अनु॰ १ मं॰ ८ ॥

भावार्थ

(नमो ब्रह्मणे॰) सच्चिदानंद लक्षण जो ब्रह्म तिसके लिये हमारा नमस्कार हो । और उनकी कृपा से (धारणं मे अस्तु) वेदादि सच्छास्त्रों के धारण की सामर्थ्य हमारेलिये हो । तथा (अनिराकरणम्) उन वेदादि सच्छास्त्रों के अर्थों का जो निराकरण अर्थात् भूलजाना सो हमें कभी न हो । और तैसेई (धारयिता भूयासं) उन वेदादि सच्छास्त्रों का जो भावार्थ उसके धारण करनेवाले भी हम हों । तथा हे परमात्मन् (कर्णयोः श्रुतं॰) जो कुछ

हमने अपने आचार्य्यों से निज कानों में उन वेदादि सच्छास्त्रों का तात्पर्य श्रवण किया है वा अन्यत्र कहीं सत्संगति में श्रवण किया हो सो (माऽयोढ़ं) कभी न भुलाइये। तब (मम) हमारे को (अमुष्य) इस सनातन धर्म तथा नवीन धर्म के निर्णय की सामर्थ्य (ओम्) परिपूर्ण होगा। (ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः) हे ओंकारस्वरूप परमात्मन् तीन प्रकार के जो ताप संज्ञक विघ्न हैं कि एक आध्यात्मिक जो कि ज्वरादि रोगों से, दूसरा आधि भौतिक जो दूसरे प्राणियों से, और तीसरा आधिदैविक जो यक्ष राक्षस ग्रहादि से पीड़ित होकर विघ्न पड़ते हैं सो इन सबकी आप शांति अर्थात् निवृत्ति कीजिये इसी हेतु यह तीनवार शांति पाठ है।

यद्यपि इस मन्त्र में सर्वत्र एक बचन ही है, बहुबचन नहीं, तथापि व्याख्यान रीति को स्वीकार करके सम्पूर्ण विद्वज्जन तथा सज्जन पुरुष और आर्यसमाजस्थ महाशयों की ओर से इस मन्त्र के अर्थ में हमने बहुबचन दिया है सो सम्पूर्ण विद्वज्जन हमारे इस साहस को क्षमा करें।

भूमिका

श्रीयुत् स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का कैसा उत्तम विचार था कि जिसको मैं कुछ अपनी वाणी से वर्णन नहीं कर सकता हूं। देखिये जब श्री स्वामी 'विरज आनन्द सरस्वती' जी से सन्यासाश्रम को ग्रहण करके 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' जी उनसे विद्याऽध्ययन करने लगे तब 'अष्टाध्यायी' और 'महाभाष्य' इन दोनों ग्रन्थों को पढ़कर 'मनुस्मृति' के पढ़ने का प्रारम्भ किया। तब उसमें यह लिखा देखा कि 'वेदोऽखिलोधर्ममूलम्' यह मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय का छठा श्लोक है अर्थात् वेद ही सम्पूर्ण धर्मों का मूल है। और इसके अनन्तर फिर लिखा देखा कि—

योऽनधीत्य द्विजोवेद मन्यत्र कुरुते श्रमम्।
सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥

यह मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय का १६८ एक सौ अड़सठवां श्लोक है, और इसका अर्थ यह है कि जो द्विज वेदों के बिना पढ़े अन्यत्र अर्थात् न्यायादि शास्त्रों के पढ़ने में परिश्रम करता है सो जीवता हुआ ही अपने पुत्र पौ-

आदिकों करके सहित बहुत शीघ्र ही शूद्रत्व को प्राप्त होजाता है सो स्वामीजी इन्हीं दो वाक्यों में दृढ़ विश्वास होकर और संपूर्ण शास्त्रादिकों का पढ़ना परित्याग कर केवल वेदों ही के पढ़ने में प्रवृत्त होगये। तथा इसी प्रकार और लोग भी न्यायादि शास्त्रों के पढ़ने में प्रवृत्त न हों केवल वेदाध्ययन में ही तत्पर रहें यह विचार कर न्यायादि शास्त्र तथा पुराणों की निन्दा करने में प्रवृत्त होगये। और कोई तात्पर्य्य स्वामी जी का शास्त्र पुराणादिकों की निन्दा करने में नहीं था सो वेदाऽध्ययन में भी स्वामी जी ने (ऋग्वेद संहिता) तथा (वाजसनेय संहिता) मात्र ही वेद पढ़कर फिर विचारा कि इस काल में पुरुषों का जीवन बहुत थोड़े काल ही होता है जो मैं बहुत काल पर्य्यन्त वेदाध्ययन ही करता रहूंगा तो फिर न जानिये क्या हो। और फिर अन्य लोगों को उपदेश करने की बड़ी हानि होगी, क्योंकि देखिये जो (१९६०८५२९७७) एक वृन्द, छानवे करोड़, आठ लाख, बावन हजार, नव सौ, सतहत्तर वर्ष आर्य्य लोगों की उत्पत्ति को हुए हैं सो वे अत्यन्त थोड़े ही काल से उत्पन्न हुए जो (यवन) और (ईसाई) लोग तिनके सन्मुख अत्यन्त थोड़े ही से देखने में आते हैं और उनकी प्रतिदिन वृद्धि होती जाती है, सो इन आर्य्य लोगों की न्यूनता और इतर लोगों की वृद्धि में केवल एक यही कारण पाया जाता है कि वेदों का न पढ़ना और कोई दूसरा कारण नहीं है, इससे बहुत शीघ्र ही उपदेश करने में प्रवृत्त होना अत्युत्तम है। ऐसे विचार कर फिर स्वामी जी ने सोचा कि मैं कोई राजा नहीं जो कि विद्वानों को वेद और वेदाङ्गों के पढ़ने पढ़ाने में उद्यत करूं और न मैं ऐसा धनी पुरुष हूं जो कि अच्छे २ विद्वानों को वेद और वेदांगों की पाठशालाओं में स्थापित करके और विद्यार्थियों के लिये अन्न वस्त्रादि दान करके पढ़ने में प्रवृत्त करूं। इससे क्या करना चाहिये कि जिससे संपूर्ण भारत वर्ष में वेदाध्ययन की प्रवृत्ति हो, और जो कि अंगरेजी आदि विद्या के पढ़ने से इतर लोगों की बुद्धि में भ्रम होगया है उनकी वेद विद्या के पढ़ने में कैसे रुचि हो, ऐसे ही विचारते २ स्वामी जी ने यह यत्न सोचा कि जिन२ कर्मों से विद्वान् लोगों की आजीविकाएँ होती हैं उन२ कर्मों का वेद के प्रमाणों से इस प्रकार खण्डन करूं कि जिनका उत्तर वेदों के बिना विचारे वे एक भी न देसकें. जब वे इसी प्रकार अपनी आजीविकाओं की हानि

होती देखेंगे तब तो अपने आप ही बड़े २ परिश्रमों से वेदों में से तथा और सच्छास्त्रों में से खोज २ कर ऐसे २ प्रमाण निकालेंगे कि जिन प्रमाणों से मेरे बनाये खण्डनों का मण्डन करें, और फिर आगे के लिये निज विद्यार्थियों को स्वयं वेद और वेदांगों के पढ़ाने में सदा उद्यत रहेंगे, और जोकि पुरुष अंगरेजी विद्या में निपुण हैं उनके लिये वेद मन्त्रों से अपने विद्या बल और चातुर्य से तार विद्या आदि अनेक अलौकिक विषय दिखाकर ऐसा प्रलोभित करूं कि जिससे वे भी वेद विद्या को बड़े परिश्रम से हितपूर्वक पढ़ें, यही स्वामी जी के अन्तःकरण का पूरा २ अभिप्राय था इसीलिये स्वामी जी ने तार विद्या आदि विषय वेद में दिखाये, और विद्वज्जनों के खिझाने के लिये मूर्ति पूजन और पुराणों के श्रवणादिकों का तथा मरे हुए पितरों के श्राद्ध और तर्पणादिकों का निषेध भी लिखा और वास्तव में तो किसी भी कर्म का खण्डन स्वामी जी ने नहीं किया, क्योंकि जो उनके अन्तःकरण में केवल निषेध करने का ही विचार होता तो (सम्बन्धिभ्यो मृतेभ्यः स्वधानमः सम्बन्धीन्मृतांस्तर्पयामि। सगोत्रेभ्यो मृतेभ्यः स्वधानमः सगोत्रान्मृतांस्तर्पयामि) इत्यादि अपने पहिले 'सत्यार्थ प्रकाश' के ४२ पृष्ठ की २३ पंक्ति में मरेहुए सम्बन्धि तथा सगोत्रियों का तर्पण क्यों लिखते, और फिर यह देखिये कि पुस्तक में ही यह लिखा परन्तु व्याख्यान देने में तो तब भी मरे हुए पितरों के श्राद्ध तर्पणादिकों का निषेध ही करते रहे। सो इसमें भी स्वामी जी का यही तात्पर्य था कि देखें विद्वान् लोग हमारे बनाये हुए ग्रन्थों का अवलोकन करते हैं वा नहीं, क्योंकि जो हमारे बनाये हुए ग्रन्थों का विद्वान् लोग अवलोकन करते होंगे तब तो कोई न कोई विद्वान् हमसे अवश्य ही कहेगा कि स्वामी जी यह क्या कारण है कि ग्रन्थ में तो आप मरेहुए पितरों का तर्पण लिखते हैं और व्याख्यान में निषेध करते हो, यह आप के कथन में व्याघात दोष है सो यह स्वामीजी से किसी ने भी न कहा, तब तो स्वामी जी ने अपने बनाये हुए 'सत्यार्थ प्रकाश' में विद्वान् लोगों को पूर्वापर विरोध प्रत्यक्ष करके दिखाने के लिये सम्वत् १८३५ में विज्ञापन पत्र छपवाकर यह विदित करदिया कि इस 'सत्यार्थप्रकाश' के छपने में बहुत से स्थानों में अशुद्धियां होगई हैं इत्यादि, और इस विज्ञापन के छपवाने का भी यही तात्पर्य था कि विद्वान् लोगों को यह विदित होजावे कि जैसे इन विषयों में स्वामी जी का बहुधा अस्त व्यस्त

लेख है इसी प्रकार अन्य विषयों पर भी सर्वत्र होगा, यही समझ कर मेरे ग्रन्थों का अवलोकन करें। परन्तु तिसपर भी विद्वान् पुरुषों ने स्वामी जी को नास्तिक समझकर उनके बनाये हुए ग्रन्थों पर कुछ भी दृष्टि नहीं दी। तब स्वामी जी ने फिर विचार किया कि ऐसी २ साधारण बातों से हमारा अभीष्ट सिद्ध नहीं होगा। अब अच्छे प्रकार से पूरा २ ही खण्डन करूं यह विचार कर फिर दूसरे (सतयार्थ प्रकाश) में विद्वान् पुरुषों के खिझाने के लिये मरे हुए पितरों के श्राद्ध और तर्पण तथा और भी अनेक प्रकार के कर्मों और मतों का विस्तार पूर्वक खण्डन किया, परन्तु बडे आश्चर्य का विषय है कि विद्वान् पुरुष तिस पर भी स्वामी जी के बनाये हुए ग्रन्थों को न देख सके और जो कदाचित् स्वामी जी के ग्रन्थों को विद्वान् पुरुष कुछ भी ध्यान देकर देखते तब तो निश्चय था कि स्वामी जी के ग्रन्थों का विद्वान् पुरुष ऐसा खण्डन करते कि इन ग्रन्थों का इस पृथ्वी पर कहीं नाम भी न सुनाई देता, क्योंकि स्वामी जी ने निज ग्रन्थों के खण्डनार्थ अपने आप ही जान बूझकर विद्वान् लोगों के लिये ऐसे २ उत्तम स्थान दे रक्खे थे कि जिनकी संख्या का कोई अन्त नहीं, परन्तु तिस पर भी विद्वानों ने स्वामी जी के अभीष्ट को सिद्ध न किया, और यह भी हम को पूरा २ निश्चय होता है कि जो कहीं दश बीस वर्ष पर्यन्त स्वामी जी का शरीर इस पृथ्वी पर और भी बना रहता तब तो अपने आप इस भारत वर्ष के सम्पूर्ण नगरों में वेद और वेदांगों की पाठशालाओं को अवश्य ही स्थापित कर देते। आश्चर्य का विषय है कि तब लग बहुत शीघ्र ही स्वामी जी के देहांत का समय आपहुंचा। अस्तु इसमें किसी का कुछ वश नहीं चल सकता। परन्तु उनके शुद्ध संकल्प के प्रभाव से अब कुछ स्वामी जी का अभीष्ट सिद्ध होता जाता है क्योंकि अब इन दिनों भारत वर्ष में ऐसा कोई नगर नहीं है कि जिसमें (आर्य समाज) वा आर्य समाजीय पुरुष न हों और तिनकी देखा देखी से (सनातन धर्म सभायें) भी अनेक नगरों में स्थापित होगई हैं और होती जाती हैं। परन्तु एक यह बड़ा आश्चर्य है कि देखिये इस भारतवर्ष में अनेक मत मतांतर विद्यमान हैं परन्तु उनमें किसी भी एक मत वाले पुरुषों की पूर्ण २ ऐसी एकता नहीं पाई जाती कि जिसमें दश पुरुषों की भी एक सम्मति हो, और आर्य समाजीय पुरुषों में चारों वर्णों के पुरुषों की ऐसी उत्तम एकता है कि कुछ कहने में नहीं आसकती सो यह ऐसी उत्तम एकता होने में भी केवल

एक स्वामी जी के तपोबल का ही प्रभाव कारण है और कोई नहीं क्योंकि देखिये यद्यपि आर्य समाज से विरुद्ध सनातन धर्म सभायें इस भारत वर्ष में अनेक विद्यमान हैं और उनका उद्देश्य भी एक यही है कि आर्य समाज मत का खण्डन करना, परन्तु तिनमें भी कहीं ऐसी उत्तम एकता नहीं पाई जाती कि जो दश बीश पुरुषों की भी अत्युत्तम रीति से पूरी २ एकता हो, सो इसमें भी यही एक कारण है कि इन पुरुषों में अभी तक स्वामी जी की समान तपो बल युक्त कोई प्रतापी पुरुष प्रगट नहीं हुआ और न आगे होने की आशा पाई जाती है क्योंकि सनातन धर्म पालक पुरुषों में ऐसा कौन होसकता है कि जो चारो वर्णों को वेदाऽध्ययन का अधिकार प्रतिपादन करे। और आर्य समाजस्थ पुरुषों में वेदाध्यन के अधिकार से लोग ऐसे उद्धट होगये हैं कि स्वामी जी ने जो पञ्चमहायज्ञादि नियमों को स्थापित किया था उनको परित्यागकर केवल देवता और साधु ब्राह्मणादिकों की निन्दा मात्र ही में कटिबद्ध हो गये हैं, और जो कोई विद्वान् पुरुष इन महाशयों के लिये उत्तर भी देते हैं तो उसको बहुत सी मिथ्या और हठ की बातों ही में उड़ादेते हैं सत्याऽसत्य का विवेचन नहीं करते, और जो कुछ विद्वानों का कथन सुनते भी हैं तो उसको स्वामी जी के बनाये हुए (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका) आदि ग्रन्थों से विरुद्ध अर्थ समझकर उनके अर्थों ही को नहीं मानते और बहुत से ऐसे पुरुष हैं कि वे स्वामी जी के वाक्यों को भी नहीं मानते और स्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में ऐसा चातुर्य किया है कि केवल निरुक्त और शतपथ आदि ग्रन्थों में से अपने मत के अनुकूल जितने २ पद हैं उनको उतने २ ही कहीं एक वा दो पद आदि के, और कहीं एक वा दो पद मध्य के, और कहीं एक वा दो पद अन्त्य के लेकर अपना अभीष्ट सिद्ध किया है अधिक नहीं, और जो कदाचित् जितना पाठ जहां पर लिखा है उसका उतना ही पाठ वहां पर लिखदेते तब तो स्वामी जी का एक भी पक्ष सिद्ध न होता, सो यह भी सब जान बूझ कर विद्वज्जनों के खिझाने के लिये ही इस प्रकार का स्वामीजी ने लिखा है कुछ भूलकर नहीं, परन्तु क्या करें स्वामी जी ने तो बहुत सी ऐसी बातें जान बूझ कर लिखीं और विद्वज्जनों को सुझाईं भी पर विद्वज्जनों ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया, और जो कदाचित् विद्वान् पुरुष ध्यान देकर देखते तब तो कोई भी इस भारत वर्ष में अनर्थ की बात न होने पाती, अस्तु।

अब संपूर्ण विद्वज्जन तथा सज्जन पुरुष और आर्य समाजस्थ महाशयों को चाहिये कि निरुक्त और शतपथ आदि ग्रन्थों के जिन २ स्थानों में जितने २ प्रमाण जहां २ स्वामी जी ने लिखे हैं उन सबको पक्षपात छोड़कर न्यायदृष्टि से विचार कर देखें तो फिर स्वामी जी का संपूर्ण पूर्वोक्त चातुर्य प्रत्यक्ष हो सकता है, यही एक उपाय सत्यासत्य के निर्णय में मुख्य है और कोई नहीं ।

अब जो २ स्वामी जी ने जान बूझकर निज ग्रन्थों के खण्डन करने के लिये विद्वज्जनों को जो २ जहां २ स्थान देरक्खे हैं उन सब स्थानों को मैं इस 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकेन्दु' ग्रन्थ में प्रसिद्ध करके दर्शित करता हूं । और जो अनेक प्रकार के कई स्थानों में विरुद्वांश हैं उनको प्रत्यक्ष करके दिखाने में हमारा कुछ प्रयोजन नहीं और न हम को अपना पाण्डित्य प्रकाश करने में प्रयोजन है, हम को तो केवल एक सनातन धर्म को प्रकाश करके दिखाने में प्रयोजन है और बातों से कुछ प्रयोजन नहीं जैसे कि वृद्धों का वाक्य है

कि

फलानाम्भक्षणेनार्थो वृक्षाणाङ्गणनेनकिम् ।

अलमति विस्तरेण बुद्धिमदर्य्येषु

इति शम्

ओ३म्

अथ वेद प्रवृत्ति विषयं व्याख्यास्यामः

:000:

सत्यंज्ञानमनन्तञ्चयत्साह स्वरूप लक्षणम् ।
तैत्तिरीय श्रुतिर्यस्य तमानन्द मुपास्महे ॥ १ ॥
ब्रह्मनिःश्वसितंवेदास्तावज्जाताः प्रजापतेः ।
सचाग्नि वायुसूर्य्येभ्योदद्राविव्यक्त वर्ण्यते ॥ २ ॥

ओम्

अब जो कि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के ८ पृष्ठ से लेकर २० पृष्ठ पर्यन्त स्वामी जी ने लिखा है कि अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा ये सृष्टि की आदि में मनुष्य देहधारी हुए थे । और उन्हीं के ज्ञान में ईश्वर ने ऋगादि वेदों का प्रकाश किया था । सो उन्हीं अग्नि, वायु, रवि और अंगिरा से ब्रह्मा जी ने

वेदों को पढ़ा था। यह इस प्रकार ऋग्गादि वेदों का प्रचार जो स्वामी जी महाराज ने वेद और ब्राह्मणों से महा विरुद्ध जान बूझकर लिखा है सो केवल विद्वज्जनों के खिझाने के लिये ही लिखा है वास्तव में नहीं।

सो देखिये

तमिद्गर्भम्प्रथमं दध्र आपो यत्रदेवः समगच्छन्त विश्वे। अजस्य नाभा वध्येक मर्पितंयस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ यजुः वा० सं० अ० १७ मं० ३० । २०

भाषार्थ

(तमिद्गर्भं प्रथमं दध्रआपः) प्रथमं अर्थात् संपूर्ण सृष्टि की आदि में (आपः जलानि) जल जो हैं सो वह (तमित् गर्भं) तिस ही गर्भ को (दध्रे) धारण करते भये कि (यत्रदेवाः समगच्छन्त विश्वे) जिस संपूर्ण विश्व के कारण भूत गर्भरूप ब्रह्मा जी में संपूर्ण देवता उत्पन्न होकर व्याप्त होरहे हैं। सो (अजस्य नाभा वध्येक मर्पितम्) जन्मादि से जो रहित सो कहावे अज ऐसा जो परमात्मा तिसकी नाभि में अर्पित जो कमल तिसमें सम्पूर्ण विश्व का बीज रूप जो ब्रह्मा सो कैसे हैं कि (यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः) जिसमें (विश्व) अर्थात् सम्पूर्ण चतुर्दश संख्यक भुवन स्थित होरहे हैं ॥ १ ॥

और इसी मन्त्र के अनुकूल गोपथ ब्राह्मण में भी लिखा है, सो देखिये यथा—

ब्रह्मह ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे। सखलु ब्रह्मा सृष्टश्चिन्तामापेदे। केनाहमेकाक्षरेण सर्वांश्च कामान्, सर्वांश्च लोकान्, सर्वांश्च देवान्, सर्वांश्च वेदान्, सर्वांश्च यज्ञान्, सर्वांश्च शब्दान्, सर्वांश्च व्युष्टीः सर्वाणि च भूतानि, स्थावर जङ्गमान्यनुभवेय मिति, सब्रह्मचर्य्यमचरत्। सओमित्येतदक्षरम पश्यत्, द्विवर्णं चतुर्मात्रं, सर्वव्यापी, सर्व विभ्वयात याम, ब्रह्मव्याहृतिं, ब्रह्मदैवतं, तया सर्वांश्च कामान्, सर्वांश्च लोकान्, सर्वांश्च देवान्, सर्वांश्च वेदान्, सर्वांश्च यज्ञान्, सर्वांश्च शब्दान्, सर्वांश्च व्युष्टीः सर्वाणि च भूतानि स्थावर जङ्गमान्यन्व भवत् इति। गोपथ० पू० भा० प्रपा० १ ब्रा० १६ ॥

भाषार्थ.

(ब्रह्म ह ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे) इइति प्रसिद्धार्थेऽव्ययम् । ब्रह्म जो है सच्चिदानन्द परमात्मा उसने ब्रह्मा को (पुष्करे) अर्थात् कमल में उत्पन्न किया । (सखलु ब्रह्मासृष्टश्चिन्ता मापेदे) सो वह ब्रह्मा जी उत्पन्न होकर यह सोचने लगे कि (केनाह मेकाक्षरेण) मैं किस एक अक्षर करके (सर्वांश्च कामान्) संपूर्ण कामनाओं को, (सर्वांश्च लोकान्) संपूर्ण पृथिव्यादि लोकों को और (सर्वांश्च देवान्) संपूर्ण अग्नि आदि देवताओं को, तथा (सर्वांश्च वेदान्) संपूर्ण ऋगादि वेदों को, और (सर्वांश्च यज्ञान्) संपूर्ण अग्निष्टोमादि यज्ञों को, तथा (सर्वांश्च शब्दान्) संपूर्ण वैदिक और लौकिकादि शब्दों को, और (सर्वांश्च व्युष्टीः) संपूर्ण समृद्धियों को, तथा (सर्वाणि च भूतानि) संपूर्ण जो भूत हैं स्थावर जंगमादि तिनका कैसे (अनुभवेयम्) अनुभव अर्थात् उत्पन्न करूं । ऐसे विचार कर (सब्रह्मचर्य्य मचरत्) तब ब्रह्मा ने ब्रह्मचर्य को धारण किया, तिस ब्रह्मचर्य के प्रभाव से (सओमित्येतदक्षर मपश्यत्) ब्रह्मा जी ने ओम् इस अक्षर का अवलोकन किया, कैसा है यह ओंमकार कि (द्विवर्णं चतुर्मात्रम्) स्वर और व्यञ्जन ये दो प्रकार के अक्षर हैं और जिसमें अकार उकार मकार तथा अर्द्धबिन्दु यह चार हैं मात्रा जिसमें और फिर कैसा है कि सर्वव्यापी और सर्व विभुः अर्थात् मूर्तिमान् तथा (अयातयाम) अर्थात् विकार रहित ऐसा ब्रह्म स्वरूप और (ब्राह्मी व्याहृति) अर्थात् ब्रह्म का नाम रूप और (ब्रह्म दैवतं) ब्रह्मा ही है देवता जिसका ऐसे ओंकार के अवलोकन मात्र से, (सर्वांश्च कामान्) संपूर्ण कामना और संपूर्ण लोक तथा संपूर्ण देवता, और संपूर्ण वेद, तथा संपूर्ण यज्ञ, और संपूर्ण व्युष्टीः अर्थात् समृद्धियें तथा (सर्वाणिच भूतानि स्थावर जंगमान्यन्व भवत्) संपूर्ण जो भूत हैं स्थावर जंगमादि तिनको अनुभव अर्थात् उत्पन्न करते भये इति । २ ॥

अब देखिये यजुर्वेद संहिता के मन्त्र में जिस प्रकार निरूपण किया तिसी का विस्तार पूर्वक गोपथ ब्राह्मण से भी सिद्ध हुआ, और यही सिद्धांत मनुस्मृति और महाभारतादि संपूर्ण पुराणों में विस्तार पूर्वक निरूपण किया है फिर स्वामी जी का लिखना कैसे सत्य हो सकता है ? कभी नहीं ।

और संपूर्ण देवताओं से पहिले एक ब्रह्मा जी ही उत्पन्न हुए और फिर सं-

पूर्व भूत प्राणियों को उत्पन्न करके वही संपूर्ण भूत प्राणियों के पति: अर्थात् स्वामी हुए, इसी अर्थ के प्रतिपादक मन्त्र अब आगे लिखते हैं सो देखिये—

हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीद्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ४॥

यजुः वा० सं० अ० १३ मं० ४॥

भाषार्थ

(हिरण्यगर्भः) जो कि मनुस्मृति में लिखा है कि (अपएव ससर्जादौ तासु-वीजमवासृजत्। तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशु समप्रभम्। तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः। इति) उसी का मूलभूत यह मन्त्र है सो देखिये (हिरण्य-गर्भः) हिरण्य जो सुवर्ण तिसकी समान वर्ण है जिसका, ऐसा जो पूर्वकाल में उत्पन्न हुआ अण्ड तिसके गर्भ में स्थित जो ब्रह्मा सो कहा जाय हिरण्यगर्भ अर्थात् प्रजापति: सो वह (अग्रे) अर्थात् जगदुत्पत्ति से पहिले (समवर्तत) भली प्रकार से वर्त्तमान् था। और वही (भूतस्यजातः) जातः अर्थात् उत्पन्न होकर संपूर्ण भूत प्राणियों का (पतिरेक आसीत्) एक आप ही (पतिः) अ-र्थात् पालक होता भया, (सदाधार पृथिवीद्यामुतेमां) सो वही पृथिवी अर्थात् अन्तरिक्ष लोक को, और (द्यां) अर्थात् स्वर्ग लोक को, तथा (उत, इति वितर्के) (इमां इस भूमि लोक को (दाधार लजादित्वाद्दीर्घः) धारण करता भया और (पृथिवी) यह अन्तरिक्ष का नाम है सो यास्क मुनि प्रणीत निघण्टु के अ०१ खं०३ में ९ नवमा नाम है सो वहां देख लीजिये। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) कः नाम प्रजापति का है। इससे (कस्मै) अर्थात् प्रजापति के लिये हम हविको (विधेम) दद्मः प्रदान करते हैं। अथवा तिस हिरण्य गर्भ को परित्या-ग कर और हम (कस्मै) किसके लिये हविः प्रदान करें यह इस प्रकार लौकिक अर्थ करलेना। ३॥

देखिये इस मन्त्र में (अग्रे) शब्द के ग्रहण से प्रसिद्ध है कि संपूर्ण श-रीर धारियों से पहिले केवल एक ब्रह्मा जी ही हुए, फिर श्री स्वामी जी महा-राज का लिखना कैसे सत्य हो सकता है? कभी नहीं। और इसी प्रकार तै-त्तिरीय आरण्यक में भी लिखा है, सो देखिये—

योदेवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वा धियोरुद्रो महर्षिः।
हिरण्य गर्भम्पश्यत जायमानं सनोदेवः शुभयास्मृत्या
संयुनक्तु ॥ तै० आ० प्रपा० १० अनु० १० मं० १६ ॥

भाषार्थ

(योदेवानां० यो देवः) जो देव परमात्मा (हिरण्यगर्भं पश्यत) हिरण्यगर्भ को पश्यत, साचात् कार करते हैं अर्थात् उत्पन्न करते है। (कथंभूतं हिरण्य गर्भं देवानां प्रथमं) कैसा हिरण्य गर्भ अर्थात् प्रजापत्तिः है जो कि अग्नि आदि संपूर्ण देवताओं का प्रथम अर्थात् आदि कारण भूत है। और फिर कैसा हिरण्य गर्भ है (पुरस्ता ज्जायमानं) जो कि अग्नि और इन्द्रादिकों की उत्पत्ति से (पुरस्तात्) पहिले ही उत्पन्न हुआ था, और कैसा है वह देव कि (विश्वाधिपः) संपूर्ण जगत् का कारण रूप होने से हिरण्य गर्भ से भी अधिक है। और फिर कैसा है वह देव जो कि (रुद्रः) रुत् जो वैदिक शब्द तिन करके प्रतिपाद्य है। और फिर कैसा है वह देव कि (महर्षिः) ऋषि जो हैं अतीन्द्रिय द्रष्टा। उनमें महान् है अर्थात् उत्तम है। क्योंकि (यः सर्वज्ञः सर्ववित्) इत्यादि वेद मन्त्रों करके प्रतिपाद्य है। (सदेवः) ऐसा जो देव है परमेश्वर सो (नः) अस्मान्) हमको (शुभयास्मृत्या) संपूर्ण संसार निवर्तकता करके उत्तम ब्रह्मतत्वानु स्मृति करके (संयुनक्तु) संयुक्त करे। ४ ॥

और इसी प्रकार तैत्तिरी संहितान्तर गतश्वेताश्व तरोपनिषद् के मन्त्र का भी तात्पर्य है, देखिये—

योब्रह्माणं विदधातिपूर्वं योवै वेदांश्च प्राहिणोतितस्मै।
त ७ हदेव मात्म बुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरण महंप्रपद्ये ॥
तै० सं० अ० ३५ श्वे० उ० मन्त्र १

भाषार्थ

(योब्रह्माणं) जो परमेश्वर संपूर्ण जगत् की उत्पत्ति से (पूर्वं) अर्थात् पहिले (ब्रह्माणं विदधाति) ब्रह्मा को उत्पन्न करते हैं और (योवैवेदांश्च तत्प्राहिणोति) जो परमात्मा तिस ब्रह्मा के लिये ऋगादि वेदों का बोध प्रदा

करते हैं। (तᳪ ह्देव मात्म बुद्धि प्रकाशं) सो तिस आत्म स्वरूप ज्ञान के प्रकाश करने वाले देव की मैं (मुमुक्षुः) अर्थात् मोक्ष होने की इच्छा है जिसको सो (शरणं प्रपद्ये) शरण को प्राप्त होता हूं इति। ५॥

तथा और भी देखिये

परीत्य लोकान् परीत्य भूतानि परीत्य सर्वाः प्रदिशोदिशश्च। प्रजापतिः प्रथम जा ऋतस्यात्मनात्मान मभिसंबभूव॥ तै० आर० प्रपा० १० अनु० १ मन्त्र १९॥

भाषार्थ

(परीत्य० ऋतस्य) ऋत अर्थात् सत्यस्वरूप ब्रह्म का (प्रथमजाः) संपूर्ण सृष्टि में पहिला कार्य्यरूप ऐसा जो (प्रजापतिः) ब्रह्मा सो (लोकान्) पृथिव्यादि लोकों को और (भूतानि) देव मनुष्यादि संपूर्ण प्राणियों के शरीर तथा (प्रदिशः) आग्नेयी आदि, और (दिशः) पूर्वादि दिशायें इन सबको (परीत्य) चारो ओर से व्याप्त होकर अर्थात् सृष्टि काल में उत्पन्न कर के फिर भी (परीत्य) स्थिति काल में रचा करके (आत्मना) स्व स्वरूप करके (आत्मानं) अर्थात् सत्य ज्ञानादि लक्षण जो परमात्मा सो (अभिसम्बभूव) इस सृष्टि में सब ओर से भली प्रकार व्याप्त होता भया। ६॥

अब संपूर्ण विद्वज्जन, तथा सज्जन पुरुष और आर्य्यसमाजस्थ महाशयों को ध्यान देकर विचारना चाहिये कि (वाजसनेय संहिता) और (तैत्तिरीय आरण्यक) तथा (श्वेताश्वतरोपनिषद्) और (गोपथ ब्राह्मणादिकों) के अनेक प्रमाणों से सृष्टि की आदि में सब से पहिले ही ब्रह्मा जी का होना और उन्हीं से संपूर्ण देवताओं और ऋग्वेदादि वेदों का अनुभव होना सिद्ध है, फिर स्वामी जी महाराज का लिखना कैसे सत्य होसकता है? कभी नहीं।

और जो कि श्री स्वामीजी ने अग्नि वायु आदित्य और अङ्गिरा से ब्रह्मा जी का वेद पढ़ना लिखा है सो भी अत्यन्त विरुद्ध है क्योंकि अग्निदेवता तो ब्रह्मा जी का पुत्र है और आदित्य देवता ब्रह्मा जी के धेवते हैं और श्री ब्रह्मा जी के ज्येष्ट पुत्र जो अथर्वा तिनके शिष्य के शिष्य से अंगिरा ऋषि ने वेद पढ़ा है, सो अब आगे हम यही सप्रमाण लिखते हैं, सो कृपादृष्टि से ध्यान देकर देखिये –

प्रजापतिरग्निमसृजत इति। तै० ब्रा० अष्टक० २ अध्याय १ अनु० २ कां० १ ॥

भाषार्थ

(प्रजापति०) प्रजापति ने अग्नि देवता को उत्पन्न किया। देखिये जब कि प्रजापति अर्थात् ब्रह्माजी से अग्नि देवता की उत्पत्ति प्रसिद्ध है तो फिर अग्नि से ब्रह्माजी का वेद पढ़ना कैसे सिद्ध होसक्ता है? कभी नहीं।

और जो कहो कि प्रजापति शब्द से तो स्वामीजीने परमेश्वर का ग्रहण माना है ब्रह्माजीका नहीं फिर तुम्हारा लिखना कैसे हम मानसकते हैं, सो इसका उत्तर वाजसनेयसंहिता के मंत्र में विद्यमान है, देखिये—

सुभूः स्वयम्भुः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे। दधेहगर्भं मृत्वियं यतोजातः प्रजापतिः॥ यजुः वा० सं० अ० २३ मं० ६३॥

भाषार्थ

(सुभूः) सुन्दर है भुवन जिसका सो कहावे (सुभूः) और (स्वयंभुः) जो अपनी इच्छा ही से शरीर को धारण करसके सो कहावे (स्वयम्भुः) ऐसा जो परमात्मा सो (महत्यर्णवे) महान् जल समूह में (ऋत्वियं) प्राप्त काल में (ह) इति प्रसिद्ध (गर्भन्दधे) उसने गर्भ को धारण किया। कैसा है वह गर्भ कि (यतो जातः प्रजापतिः) जिस गर्भ से प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए सो वह संपूर्ण वेद और ब्राह्मणों तथा पुराणादिकों में भी प्रसिद्ध है इसे निःसन्देह प्रजापति शब्द से ब्रह्माही का ग्रहण है अन्य का नहीं।

और अब आदित्य देवता जिस प्रकार से ब्रह्माजी के पेवता हैं सो सप्रमाण निरूपण करते हैं, देखिये—

ब्रह्मणश्च दक्षिणाङ्गुष्ठ जन्मा दक्ष प्रजापतिर्दक्षस्याऽप्यदितिरदितेर्विवस्वान् ॥

इस पराशर सूत्र के प्रमाण से सिद्ध है ब्रह्माजी के दाहिने अङ्गुष्ठ से दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए। और दक्ष प्रजापति से अदिति नामी कन्या उत्पन्न हुई। और उस अदिति से (विवस्वान्) अर्थात् आदित्य देवता उत्पन्न हुए

इस सूत्र से स्पष्ट विदित होता है कि ब्रह्मा जी के आदित्य धेवते हैं फिर तिनसे ब्रह्मा जी का वेद पढ़ना कैसे सत्य होसकता है, कभी नहीं ॥ ६ ॥

और इसी सूत्र के विषय में तैत्तरीय आरण्यक का भी प्रमाण है सो देखिये

अष्टौ पुत्रा सो अदितेः । तै० आ० प्रपा० १ अनु० १३ मं० ७ ॥

भाषार्थ

(अष्टौ पुत्रा सः०) अदिति के आठ पुत्र उत्पन्न हुए । सो वह कौन २ से हैं, देखिये –

मित्रश्च वरुणश्च । धाता चार्य्यमाच । अंशश्च भगश्च । इन्द्रश्च विवस्वाँश्चेत्येते । तै० आर० प्रपा० १ अनु० १३ मं० १० ॥

भाषार्थ

(मित्रश्चेति) – (१) मित्र, (२) वरुण, (३) धाता, (४) अर्य्यमा, (५) अंश, (६) भग, (७) इन्द्र, और (८) विवस्वान्, (इत्येते) ये इतने आठ पुत्र अदिति के हुए। तो अब विचारकर देखना चाहिये कि आदित्य को ब्रह्मा जी के धेवता होने में कौन बाधक है ॥ ११ ॥

और अब जिस प्रकार से आदित्यों की उत्पत्ति हुई है सो भी 'अथर्व संहिता' और 'गोपथ ब्राह्मण' के प्रमाण से लिखते हैं, सो देखिये –

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा । सप्त ऋषयो भूतकृतस्ते त्वामन्थन्तु प्रजया सहेह ॥ अथर्वसं० कां० १० प्रपा० २४ अनु० ६ मं० १

भाषार्थ

(अग्ने जायस्व०) हे अग्ने (त्वां) तुम्हारे को (सप्त ऋषयः) सप्त ऋषि और (भूत कृतः) स्थावर जङ्गमादि भूत प्राणियों के उत्पन्न करने की सामर्थ्य वाले सो (प्रजयासह) प्रजा करके सहित (इह) इस यज्ञ मण्डल में (मन्थन्तु) दो अरणियों में से मथन करते हैं, सो आप (जायस्व) उत्पन्न

लिये। आप के लिये (इयं) यह अदिति (नाधिता) प्रार्थना करती है और (पुत्र कामा) पुत्रोत्पत्ति की कामना करके (ब्रह्मौदनं पचति) अर्थात् ब्राह्मणेभ्यो देय मोदनं ब्रह्मौदनं इस व्युत्पत्ति से यह अर्थ होता है कि ब्राह्मणों के देने योग्य जो ओदन अर्थात् भात सो कहावे ब्रह्मौदन सो उसको अदिति ने पकाया है इति ॥ १२ ॥

अब इसी मंत्र के तात्पर्य्य का विस्तार पूर्वक जो गोपथ ब्राह्मण में निरूपण है सो भी लिखते हैं, यथा–

अदितिर्वै प्रजाकामौदन मपचत्। तत उच्छिष्ट मश्नात्।
सागर्भमधत्त। तत आदित्या अजायन्त ॥ इति गोपथ
पूर्वभागे० प्रपा० २ ब्रा० २५ ॥

भाषार्थ

(अदितिर्वै०) 'वै' (इति निश्चयार्थक मव्ययम्) यह निश्चय अर्थ का बोधक अव्यय है। (अदितिर्वै प्रजाकामौदन मपचत्) अदिति ने प्रजा अर्थात् सन्तान की उत्पत्ति के लिये (ओदन) अर्थात् ब्रह्मौदन पकाया। (तत उच्छिष्ट मश्नात्) तिसमें से उच्छिष्ट अर्थात् बचाहुआ जो यज्ञ का शेषभाग उसको (अश्नात्) उसने खालिया। (सागर्भमधत्त) सो उसके खाने से (अदितिः गर्भमधत्त) अदिति गर्भ को धारण करती भयी।, (तत अदित्या अजायन्त) तिस गर्भ से द्वादश आदित्य उत्पन्न हुए, इति ॥ १३ ॥

अब सम्पूर्ण विद्वज्जन तथा सज्जन पुरुष और आर्य समाजस्थ महाशयों को विचार कर देखना चाहिये कि जब ऐसेही अनेक प्रमाणों से आदित्य ब्रह्मा जी के बेटे सिद्ध हैं तो फिर श्री स्वामी जी महाराज का लिखना कैसे सत्य होसकता है, कभी नहीं।

और अब अङ्गिरा जी का भी वर्णन सुनिये, यथा–

अथर्वणेयां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वातामपुरो वाचाङ्गिरे ब्रह्म
विद्यां। सभरद्वाजाय सत्य वाहायप्राह भरद्वाजोऽङ्गिरसे
परा वराम् ॥ इति मुण्डक० उ० खं० १ मं० २ ॥

(अथर्वणे०) अपने ज्येष्ट पुत्र अथर्वा के लिये ब्रह्मा जी ने (यां) जिस ब्रह्म विद्या को (प्रवदेत् अवदत्) अर्थात् उपदेश किया था सो अथर्वा (तां ब्रह्म विद्यां) तिस ब्रह्म विद्या को (पुरा) सबसे पहिले (अङ्गिरे०) अङ्गिरा ऋषि के लिये (उवाच) उपदेश करते भये अर्थात् पढ़ाते भये। (सभरद्वाजाय सतयवाहाय प्राह) सो अङ्गिरा भरद्वाज गोत्रोत्पन्न सतयवाह के लिये उपदेश करतेभये (भरद्वाजोङ्गिरसे परावराम्) सो भरद्वाज गोत्रोत्पन्न सत्यवाह जी अंगिरस् के लिये परमोत्तम ब्रह्म विद्या अर्थात् वेद विद्या को पढ़ाते भये इति ॥ १४ ॥

अब जो कि स्वामी जीने अंगिरा से ब्रह्मा जी को वेद विद्या का पढ़ाना लिखा है सो कैसे सिद्ध होसकता है, कभी नहीं।

और इसी विषय में और भी मुण्डकोपनिषद् का प्रमाण है, देखिये —

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता। स ब्रह्म विद्यां सर्व वेद प्रतिष्ठा मथर्वाय ज्येष्ट पुत्राय प्राह ॥ मुण्डकोप० खं० १ मं० १ ॥

भाषार्थ

(ब्रह्मा देवानां प्रथमः) सम्पूर्ण देवताओं के प्रथम अर्थात् पहिले ब्रह्मा जी ही उत्पन्न हुए, कैसे हैं ब्रह्मा जी कि (विश्वस्यकर्ता भुवनस्य गोप्ता) संपूर्ण विश्व के कर्ता और चतुर्दश भुवनों के गोप्ता अर्थात् रक्षा करनेवाले हैं (स ब्रह्म विद्यां सर्व वेद प्रतिष्ठां) सो वह ब्रह्मा जी सम्पूर्ण ऋगादि वेदों की प्रतिष्ठा रूप जो ब्रह्म विद्या उसको (अथर्वाय ज्येष्ट पुत्राय प्राह) अथर्वा नाम से प्रसिद्ध जो अपना ज्येष्ठ पुत्र तिसके लिये ही उपदेश करतेभये ॥ १५ ॥

देखिये इस मुण्डक उपनिषद् के प्रमाण से भी सम्पूर्ण देवताओं से पहिले ब्रह्मा जी का ही उत्पन्न होना और फिर सबसे पहिले अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा के लिये ब्रह्म विद्या का उपदेश देनो यह सिद्ध है फिर स्वामी जी का लिखना कैसे सत्य होसकता है, कभी नहीं।

और जो कि श्री स्वामी जीने (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के) वेदोत्पत्ति विषय में (तस्मात् यज्ञात्०) यह यजुर्वेद संहिता के मन्त्र का प्रमाण लिखा

है सो उस मंत्र से ब्रह्मा जी से ही वेदों का प्रचार होना प्रत्यक्ष सिद्ध है सो देखिये

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाᳬसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥

यजु० वा० सं० अ० ३१ मं० ७ ॥

(तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत:) तिस सर्व पूज्य यज्ञ पुरुष ब्रह्मा जी से (ऋच:) ऋग्वेद और सामानि सामवेद (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं । और (छन्दाᳬसि जज्ञिरे तस्मात्) छन्दांसि अर्थात् अथर्व वेद भी तिस यज्ञ पुरुष ब्रह्मा जी से ही उत्पन्न हुए हैं । और (यजुस्तस्मादजायत) तिस ब्रह्मा जी से ही यजुर्वेद उत्पन्न हुआ है, इति ॥ १६ ॥

अब संपूर्ण विद्वज्जन तथा सज्जन पुरुष और आर्य समाजस्थ महाशयों को विचार करके देखना चाहिये कि श्री स्वामी जी ने इस मन्त्र का अर्थ संस्कृत भाष्य में और भाषा भाष्य में भी विस्तार पूर्वक लिखा, परन्तु संपूर्ण मन्त्र का मूलभूत जो (यज्ञ) शब्द तिसका अर्थ स्वामी जी ने कहीं भी कुछ न लिखा, और जो न्याय दृष्टि से विचार कर देखिये तो स्वामी जी ने इस मन्त्र के अर्थ को कहीं भी नहीं लिखा । परन्तु इस मन्त्र के अर्थ लिखने के प्रारम्भ में जो अपने आप स्वामी जी ने अपनी संस्कृत बनाकर लिखदी है कि (तस्माद्यज्ञात्सच्चिदानन्दादि लक्षणात् पूर्णात् पुरुषात् सर्वहुतात् सर्व पूज्यात्सर्वोपास्यात्सर्वशक्तिमत: परब्रह्मण इति) इसी का संस्कृत और भाषा में भाष्य बनाकर लिख दिया है अधिक नहीं । और जो कदाचित् इस मन्त्र का अर्थ स्वामी जी पूरा पूरा यथार्थ ही लिख देते तब तो इस मन्त्र के अर्थ में भी ब्रह्मा जी से ही वेदों का उत्पन्न होना सिद्ध होता, देखिये —

प्रजापतिर्वैयज्ञइति गोपथ उत्तरभा० प्रपा० ॥ ब्रा० १२ ॥

योवै प्रजापति: सयज्ञइति ॥ गो० प्रपा० ४ ब्रा० १२ ॥

यज्ञोवै प्रजापतिरिति ॥ तै० ब्रा० अ० २ अ० ३ अनु० १० ॥

भाषार्थ

(वै इति निश्चयार्थक मव्ययम्) 'वै' यह निश्चय अर्थ का बोधक अव्यय है। (प्रजा०) प्रजापति ही यज्ञ संज्ञक है ॥ १७ ॥ (योवै०) जो प्रजापति संज्ञक है वही यज्ञ नाम से प्रसिद्ध है ॥ १८ ॥ (यज्ञोवै०) यज्ञ ही प्रजापति संज्ञक है इत्यादि गोपथ और तैत्तिरीय तथा शतपथादि ब्राह्मणों में यज्ञ नाम प्रजापति का है। और प्रजापति नाम विशेष करके ब्रह्मा जी का ही बोधक है और कहीं २ दक्षप्रजापति आदिकों का भी वाची है और वेदोत्पत्ति विषय में यहां ब्रह्मा ही का बोधक है अन्य का नहीं, सो देखिये—॥ १९ ॥

प्रजापतिः सोमं राजानमसृजत। तन्त्रयो वेदा अन्वसृज्यन्त। तान् हस्तेऽकुरुत इति ॥ तै० ब्रा० अष्ट० २ अध्याय ३ अनु० १० कां १०॥

भाषार्थ

(प्रजापतिः) प्रजापति जो हैं ब्रह्मा सो वह सोम राजा को उत्पन्न करते भये। (तदनु त्रयोवेदाः) तदनन्तर तीनों वेदों को उत्पन्न किया। (तान् हस्तेऽकुरुत) सो वह सोम राजा तिन ऋगादि तीनों वेदों को अपने हाथ की मुट्ठी में छिपा लेता भया इससे प्रजापति शब्द से यहां ब्रह्मा जी का ही ग्रहण है अन्य का नहीं यह सिद्ध हुआ इति ॥ २० ॥

और जो कि श्री स्वामी जी ने वेदोत्पत्ति विषय में दूसरा अथर्व वेद संहिता के मन्त्र का प्रमाण दिया है सो भी स्वामी जी के अभीष्ट को सिद्ध नहीं कर सकता, देखिये—

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम्। स्कम्भन्तम्ब्रूहि कतमः स्विदेवसः ॥ अथर्व सं० कां० १० प्रपा० २३ अनु० ४ मं० २० ॥

भाषार्थ

(यस्मादृचो०) जिस परमात्मा से ऋग्वेद उत्पन्न हुए हैं। और (यजुर्यस्मादपाकषन्) जिस परमात्मा से यजुर्वेद उत्पन्न हुआ है और (सामानियस्य

लोमानि) सामवेद जिस परमात्मा के रोम हैं। तथा (अथर्वाङ्गिरसो मुखम्) आंगिरस् जो है अथर्व वेद सो जिसका मुख है (स्कंभन्तंब्रूहि कतमः स्विदेवसः) ऐसा जो है स्कम्भ अर्थात् सब का आश्रय भूत सो (कतमः) कौन है कि (स्वित्एवसः) वही केवल एक परब्रह्म परमात्मा ही है और कोई नहीं ।२१॥

अब न्याय दृष्टि से विचार करके देखना चाहिये कि जिस अनुवाक का यह मन्त्र है उस अनुवाक में केवल विराट् का ही निरूपण है सो इस मन्त्र से भी विदित होता है कि सामवेद जिसके रोम हैं और अथर्व वेद जिसका मुख है इससे कौन ऐसा पुरुष है कि जो इस मन्त्र को विराट् वर्णन में न मान सके सो प्रत्यक्ष ही है फिर स्वामी जी का लिखना कैसे सिद्ध हो सकता है, कभी नहीं ।

और जो कि स्वामी जीने (अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः) यह तीसरा शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण दिया है सो भी ठीक नहीं, क्योंकि इसके पहिले की अढ़ाई कण्डिकाओं को छोडकर तीसरी में से आधी कण्डिका मात्र ही लिखदी है जो उसी विषय की संपूर्ण तीनों कण्डिकाओं को लिख देते तब तो स्वामी जी का कुछ भी अभीष्ट सिद्ध न होता, देखिये—

प्रजापतिर्वाइदमग्र आसीत् । एकएव । सोऽकामयत ।
स्यांप्रजायेयेति । सोऽश्राम्यत्सतपोऽतप्यत । तस्माच्छ्रा-
न्तात्तेपाना त्र्योलोका असृज्यन्त । पृथिव्यन्तरिक्षंद्यौः
॥ १ ॥ सइमांस्त्रींल्लोकान भितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्य
स्त्रीणिज्योतींष्यजायंताग्निर्योऽयं पवतेसूर्य्यः ॥ २ ॥
तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयोवेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजु-
र्वेदः सूर्य्यात्सामवेदः ॥ ३ ॥ शतपथ कां० ११ अ० ५
ब्रा० ३ कं० १ । २ । ३ ॥

भाषार्थ

(प्रजापतिः) 'वै' इतिनिश्चयार्थक मव्ययम् अग्रे) अर्थात् जगत् की उत्पत्तिसे पहिले (एकएव प्रजापतिः) एक ही केवल प्रजापति था और कोई नहीं (सोऽकामयत) सो कामना अर्थात् इच्छा करता हुआ (स्यांप्रजायेयेति) कि मैं अनेक

रूपों से उत्पन्न होऊं (सोऽश्राम्यत् सतपोऽतप्यत) सो प्रजापतिः श्रान्त चित्त होकर आलोचनात्मक तप करता भया। (तस्माच्छ्रान्तात्तेपानात्) तिस चित्त की स्थिरता और आलोचनात्मक तप करने से (त्रयोलोका असृज्यन्त) तीनों लोक उत्पन्न किये। सो उन तीनों लोकों को दिखाते हैं कि (पृथिव्यन्तरिक्षंद्यौः) एक पृथिवी लोक, दूसरा अन्तरिक्ष लोक, तीसरा (द्यौः) अर्थात् स्वर्ग लोक इति, इन तीनों लोकों को उत्पन्न करके फिर (सइमाल्लोकानभितताप) सो प्रजापति इन तीनों लोकों को पर्यालोचनात्मक तप कराता हुआ। तब (तेभ्यस्तप्तेभ्य स्त्रीणिज्योतींष्यजायन्त) तिनसे आलोचनात्मक तप कराने से तीन ज्योति अर्थात् प्रकाशात्मक तीन देवता उत्पन्न किये। सो उनको दिखाते हैं कि (अग्निर्योऽयम्पवते सूर्यः) एक अग्निः और दूसरा जो कि संपूर्ण विश्व को पावन करता अर्थात् पवित्र करने द्वारा वायुः। तथा तीसरा सूर्य इति ॥ २ ॥ (तेभ्यस्तप्तेभ्यः) फिर इन तीनों देवताओं से आलोचनात्मक तप कराने से (त्रयोवेदा अजायन्त) तीनों वेदों को इस संसार में प्रगट कराते भये। अर्थात् ऋग्वादि तीनों वेदोक्त यज्ञादि कर्मों की प्रवृत्ति कराते भये सो दिखाते हैं कि (अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात् सामवेदः) अग्नि से ऋग्वेदोक्त कर्म और वायु से यजुर्वेदोक्त कर्म, तथा सूर्य से सामवेदोक्त कर्म इस संसार में प्रगट हुए। सो इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में भी लिखा है, सो देखिये। २२ ॥

प्रजापतिर कामयत प्रजायेय भूयान्स्यामिति । सतपोऽतप्यत सतपस्तप्त्वेमांल्लोकान सृजत । पृथिवीमन्तरिक्षं दिवं । सतांल्लोका नभ्य तपत्तेभ्यो ऽभितप्तेभ्य स्त्रीणिज्योतींष्यजायन्त । अग्निरेव पृथिव्या अजायत । वायुरन्तरिक्षात् । आदित्योदिवस्तानि ज्योतींष्यभ्यतपत् तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयोवेदा अजायन्त । ऋग्वेदएवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः । सामवेद आदित्यादित्यादि । ऐतरेय ब्रा० पंजिका ५ कं० ३२ ॥

भाषार्थ

(प्रजापतिः) प्रजापति जो ब्रह्मा सो (ऽकामयत) इच्छा करता हुआ कि

(प्रजायेय) में उत्पन्न होकर (भूयान्स्यामिति) बहुत प्रकार का होजं । ऐसे विचार कर (सतपोऽतप्यत) सो पर्य्यालोचनात्मक तप करता हुआ । (सतपस्तप्त्वेमांल्लोकान् सृजत) सो पर्य्यालोचनात्मक तप करके इन तीन लोकों को उत्पन्न करता हुआ । (पृथिवीं अन्तरिक्षं दिवं) एक पृथिवी लोक को दूसरे अन्तरिक्ष लोक को, तीसरे (दिवं) अर्थात् स्वर्ग लोक को फिर (तांल्लोकानभ्यतपत्) प्रजापति उन तीनों लोकों को पर्य्यालोचनात्मक तप कराता हुआ (तेभ्योऽभितप्तेभ्य स्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्त) तिनके पर्य्यालोचनात्मक तप करने से तीन ज्योति अर्थात् प्रकाशात्मक तीन देवता उत्पन्न हुए । सो उनको दिखाते हैं (अग्निरेव पृथिव्या०) अग्नि देवता पृथिवी से उत्पन्न होता भया (वायुरन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से वायु । और (आदित्योदिवः) द्युलोक से आदित्य उत्पन्न हुआ फिर प्रजापति (तानिज्योतींष्यभ्यतपत) फिर तिन तीनों ज्योति अर्थात् तीनों देवों को पर्यालोचन करता हुआ, (तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयोवेदा अजायन्त) तिनके पर्यालोचन से तीनों वेद उत्पन्न हुए । अर्थात् तीनों वेदोक्त यज्ञादि कर्म इस संसार में प्रगट हुए । (ऋग्वेद एवाग्ने) ऋग्वेदोक्त कर्म अग्नि से प्रवृत्त हुए । और (यजुर्वेदो वायोः) यजुर्वेदोक्त कर्म वायु से और (सामवेद आदित्यादिति) सामवेदोक्त कर्म आदित्य से इस संसार में प्रगट हुए ॥ २१ ॥

अब देखिये इस ऐतरेय ब्राह्मण के प्रमाण से सर्वत्र प्रजापति ही लोक ज्योति आदिकों का पर्य्यालोचनात्मक तप करानेवाला सिद्ध है । क्योंकि (अभ्यतपत्) इस क्रिया का प्रजापति ही कर्ता है और कोई नहीं । और जो कहो कि (ऋग्वेद एवाग्नेरजायत । यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात्) इनमें कहीं ऋग्वेदोक्त कर्म वा यज्ञादि बोधक कोई पद नहीं है फिर आप ने यह अर्थ कहां से सिद्ध किया, सो सुनिये स्वामी जी ने सतपथ आदि ब्राह्मणों को ऋषि प्रणीत वेदों की व्याख्यारूप माना है और व्याख्या ग्रन्थों की यह रीति होती है कि गूढ़ अर्थ को प्रत्यक्ष करदेना और जो कि प्रसिद्धार्थक पद हैं उनको केवल दिखादेते हैं विशेष व्याख्या उनकी नहीं करते क्योंकि वे तो मूल ही से स्वयं स्पष्ट हैं इस कारण से इनमें कर्म और यज्ञादि बोधक पद नहीं है और हमने अर्थ लिखे हैं सो संहिताओं के अनुकूल ही लिखे हैं कुछ घरजाने मनमाने नहीं लिखे, सो देखिये —

प्रजापतिर्देवेभ्योऽन्नाद्यं व्यादिशत् ॥ तै० सं० कां० २ प्रपा० ३ अनु० ६ कं० १ ॥

प्रजापतिर्यज्ञान सृजत ॥ तै० सं० कां० १ प्रपा० ६ अनु ९ कं० १ ॥

प्रजापतिर्देवेभ्यो यज्ञान् व्यादिशत् ॥ [illegible] प्र० ८ अनु० १४ कं० १ ॥

सन्दर्भ पुस्त[क] 208
परिग्रहण क्रमांक ...
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षे[त्र]

भाषार्थ

(प्रजापतिर्देवेभ्यो०) प्रजापति ने अग्न्यादि देवताओं को (अन्नाद्य) का उपदेश किया। सो (अन्नाद्यं) इस पद का अर्थ यह है कि (अत्तुं योग्य मन्नं मन्नाद्यं) भक्षण करने के योग्य जो अन्न सो कहावे 'अन्नाद्यं' जैसे कि (आग्ना वैष्णव मेकादश कपालं। वैष्णवं त्रि:कपालं) इत्यादि जिस प्रकार का जहां जैसा कर्म हो वहां पर उतनेही कपालों की विधि है अधिक नहीं। सो प्रजापति ने देवताओं को विभाग करके उपदेश दिया कि अमुक कर्म में अमुक देवता का भाग है और अमुक कर्म में अमुक का है। इत्यादि इससे हमने कर्म का ग्रहण किया ॥२४॥ और (प्रजापतिर्यज्ञान सृजत) प्रजापति ने यज्ञादिकों को उत्पन्न किया, और फिर उन यज्ञों को देवताओं के प्रति बांट दिया, सो तैत्तरीय संहिता के कां० १ प्र० ६ अनु० ९ में प्रसिद्ध है, यहां ग्रन्थ बढ़ने के भय से नहीं लिखा ॥२५॥ (प्रजापतिर्देवेभ्यो यज्ञान् व्यादिशत्) प्रजापति ने अग्नि आदि देवताओं को यज्ञों का बोध प्रदान किया। इत्यादि प्रमाणों से हमने यज्ञ पद का ग्रहण किया है सो यही अर्थ ठीक है। और जो कदाचित् अग्न्यादिकों से ही ऋगादि वेदों की उत्पत्ति मानी जाय तो बड़ा भारी वज्रपात दोष है कि एक तो वेदों का सनातन होना, दूसरे (अपौरुषेय) मानना इत्यादि पक्ष फिर कोई भी सिद्ध न होगा।

और जो कि स्वामी जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के १० पृ० ७ पंक्ति में लिखा है कि —

एवंवा अरेऽस्य महतो भूतस्य नि:श्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इत्यादि। श० कां० १४ अ० ५ ब्रा० ४ कं० १० ॥

स्वामी जी ने इसका अर्थ यह लिखा है कि—

याज्ञवल्क्य महा विद्वान् जो महर्षि हुए हैं वह अपनी पण्डिता मैत्रेयी स्त्री को उपदेश करते हैं कि हे मैत्रेयी जो आकाशादि से भी बड़ा सर्व व्यापक परमेश्वर है उससे ही ऋक्, यजुः साम और अथर्व यह चारो वेद उत्पन्न हुए हैं, जैसे मनुष्य के शरीर से श्वासा बाहर को आके फिर भीतर को जाती हैं, उसी प्रकार सृष्टि की आदि में ईश्वर वेदों को उत्पन्न करके संसार में प्रकाश करता है और प्रलय में संसार में वेद नहीं रहते। परन्तु उसके ज्ञान के भीतर वे सदा बने रहते हैं। (वीजांकुरवत्) जैसे बीज में अङ्कुर प्रथम ही रहता है वही वृक्ष रूप होके फिर बीज के भीतर रहता है, इसी प्रकार से वेद भी ईश्वर के ज्ञान में सदा बने रहते हैं उनका नाश कभी नहीं होता, क्योंकि वह ईश्वर की विद्या है इससे इनको नित्य ही जानना इति ॥ २७ ॥

अब संपूर्ण विद्वज्जन तथा सज्जन पुरुष और आर्य समाजस्थ महाशयों को विचार कर देखना चाहिये कि जब ईश्वर के श्वास रूप वेद हैं और फिर वे नित्य भी हैं तो कहिये फिर उनका अग्नि वायु आदित्य इनसे उत्पन्न होना कैसे सत्य होसकता है ? और एक यह भी बड़ा आश्चर्य है कि जब ईश्वर के श्वास रूप वेद हैं और उस ईश्वर ने संपूर्ण देवताओं से पहिले ब्रह्मा जी को ही उत्पन्न किया फिर ब्रह्मा जी को परित्यागकर कालांतर में उत्पन्न हुए जो अग्नि वायु रवि तिनके हृदय में ईश्वर ने वेदों के बोध का प्रदान कैसे किया होगा ? इस से यही निश्चय करना चाहिये कि सब से पहिले उत्पन्न हुए जो ब्रह्मा जी उन्हीं के हृदय में ईश्वर ने वेदों के बोध का प्रदान किया, और ब्रह्मा जी ने फिर अग्न्यादि द्वारा वेदोक्त यज्ञादि कर्मों की प्रवृत्ति कराई, इति।

और जो कहो कि यह सम्पूर्ण आप का कथन सत्य है परन्तु शतपथ और ऐतरेय इन दोनों ब्राह्मणों में जो लिखा है कि द्युलोक से आदित्य देवता की उत्पत्ति हुई तो फिर आपने जो आदित्य को ब्रह्मा जी का येवता सिद्ध किया था सो किस प्रकार सत्य रहेगा, जो कहो कि (अदितेरपत्यं मादित्यः) इस व्युत्पत्ति से अदिति का पुत्र होने से देवता होना सिद्ध है सो भी आप का कहना ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि (अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षम् इति) निरु० अ० ४ प्रपा० ४ खं० २) इस निरुक्त के प्रमाण से (द्यौः) अर्थात् स्वर्ग इसका

भी नाम अदिति है फिर इससे भी आप का यह लिखना सत्य न होसकेगा। सुनिये इसका उत्तर भी, निरुक्त शास्त्र ही में उसी स्थान पर विद्यमान है, देखिये—

अदितिरदीना देवमाता १।२२॥ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जात मदितिर्जनित्वम्। ऋ०सं०१।६।१६।५॥ इत्यदितेर्विभूति माचष्ट इति॥ निरु० अ० ४ प्रपा० ४ खं० २॥

भाषार्थ

(अदितिरदीना देवमाता १) ऐतिहासिकों के मत में अदिति नाम से देवताओं की माता का ग्रहण है। और (नैरुक्तों के मत में) अदीनादिगुण युक्तों का नाम अदिति है। और आत्म पक्ष में अदिति नाम से प्रकृति का ग्रहण है। इस प्रकार यास्क मुनि जी का कथन है। अदीना पद का यह अर्थ है कि जो संपूर्ण प्रपञ्च के धारण करने में अदीन हो अर्थात् दुःखित न हो उसको 'अदीना' कहते हैं और सिद्धांत यह है कि भाष्यकार लिखते हैं कि (द्विविधा-हि शब्द प्रवृत्तिः मुख्यार्था गौणीचेति) दो प्रकार की शब्दों की प्रवृत्ति होती है। एक मुख्य अर्थ वाली। और दूसरी गौण अर्थ वाली इति। सो यहां देवमाता का वाची जो अदिति शब्द है सो मुख्य है। और जोकि अदिति शब्द (अदितिर्द्यौ०) इस मन्त्र में पढ़ा है सो 'गौण' है, देखिये—

(अदितिर्द्यौरदिति रन्तरिक्षं०) अदिति ही द्यौः अर्थात् स्वर्ग रूप है। और अदिति ही अन्तरिक्ष रूप है। (अदितिर्माता स पिता स पुत्रः) अदिति ही देवमाता है अर्थात् संपूर्ण भूत प्राणियों के निर्माण करने वाली है। और अदिति ही पिता अर्थात् पालक है। और अदिति ही पुत्र है अर्थात् संतुष्ट होकर अपने स्तोताओं को (पुरु) अर्थात् बहुत से पापों से (त्रायते) रक्षा करती है, (विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजनाः) और जोकि (विश्वेदेवाः) अर्थात् जो संपूर्ण देवता हैं वे भी अदिति ही हैं और पञ्चजनाः अर्थात् जोकि गन्धर्वादि कहैं

वे भी अदिति हैं। और (अदितिर्जातं मदितिर्जनित्वम्) बहुत कहां लग निरूपण करें जो यह जितना प्रपञ्च (जातं) उत्पन्न होरहा है सो भी अदिति ही है। और जो कुछ आगे (जनित्वं) उत्पन्न होगा, सो भी अदिति ही होगा इति (इत्यदितेर्विभूतिमाचष्टे) यह इस प्रकार इस मन्त्र के द्रष्टाऋषि ने केवल देवमाता अदिति की विभूति अर्थात् ऐश्वर्य का ही निरूपण किया है। इस प्रकार यास्कमुनि जी ने लिखा है सो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि (महाभाग्याद्देवतायाः निरु० अ० ७ प्पा० १ खं० ४) देवताओं को महान् ऐश्वर्यमान् होने से सब कुछ वे करसकते और हो सकते हैं। (एतददितिः सर्वमिति निरु० १।५।२) संपूर्ण विश्व ही अदिति रूप है ऐसे निरुक्त में लिखा है परन्तु यह सब ऐश्वर्य देवमाता अदिति का ही है। इससे देवमाता अदिति यह मुख्य है। और अदितिर्द्यौ इत्यादि सब गौण कथन है और (गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्य्यसंप्रत्ययः) यह संपूर्ण शास्त्र सम्मत है इसी से गौण को परित्याग कर मुख्य का ही ग्रहण करना ठीक है गौण तो कथन मात्र ही होता है वास्तव में नहीं। यथा

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

इति

जैसे यह किसी देवता वा गुरु की प्रशंसा करीगई, तो क्या इससे व्यवहारिक माता पिता आदिकों का अभाव होजायगा कभी नहीं यह सब गौण कथन है मुख्य तो केवल व्यवहारिक ही माता पितादिक हैं इससे इसीप्रकार अदिति शब्द को भी विचार लीजिये। फिर आदित्य को ब्रह्मा जी के भेवता होने में कौन बाधक है, इससे हमारा लिखना घरजाना मनमाना नहीं है हम तो श्री स्वामीजी की कृपा से वेद प्रमाणों ही से पुष्ट करके यथार्थ लिखते हैं और न जानिये स्वामी जी ही हमारे अन्तःकरण में स्थित होकर इस समय में अपना अभिप्राय प्रकाश कररहे हैं। इति

(प्रकृत मनुसरामः)

ऐसे शङ्का का समाधान करके अब उसी प्रकरण का निरूपण करतेहैं देखिये — जो कि स्वामी जी ने वेदोत्पत्ति विषय में मनुस्मृति का प्रमाण लिखा है कि —

अग्नि वायु रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सानातनं ।
दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थमृग्ययुः साम लक्षणम् ॥

सो इस मनुस्मृति के श्लोक का अभिप्राय प्रकट करने के लिये हम इसके आदि के दो श्लोक औरभी लिखते हैं। और वास्तव में तो हमको स्वामी जी का अभीष्ठ सिद्ध करने के लिये उनके बनाये ग्रन्थों के सिद्धांत निरूपण में मनुस्मृति के प्रमाण देने की कहीं भी कुछ आवश्यकता नहीं, इससे हम को प्रतिज्ञा भङ्ग का दोष न देना, देखिये—

सर्वेषान्तुसनामानि कर्माणिच पृथक् पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थांच निर्मिते ॥
कर्मात्मनाञ्च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः ।
साध्यानाञ्च गणं सूक्ष्मं यज्ञंचैव सनातनम् ॥
अग्नि वायु रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनं ।
दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थमृग्यजुः साम लक्षणम् ॥
मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक २१, २२, २३, ॥

भाषार्थ

(सर्वेषान्तु०) स्वर्ग भूमि आदि और महदादि क्रम सृष्टि तथा देवगणादि सृष्टि को उत्पन्न करके तदनन्तर ब्रह्मा जीने सम्पूर्ण जीवों के नाम और तिनके कर्म जो२ जिस २ प्रकार के पहिली सृष्टि में थे। तिसी २ प्रकार के (वेदशब्देभ्यएवादौ०) वेदों के शब्दों से देख २ कर उन्हीं से भिन्न २ यथा योग्य तिनकी मर्यादाओं को स्थापित किया ॥ २१ ॥ तथा (कर्मात्मनांच देवानां) अग्नीन्द्रादिक जो देवता तिनके कर्म और आत्मा अर्थात् स्वभाव और जो देव विशेष साध्यादि तिन के गण जो अत्यन्त सूक्ष्म तथा सनातन जो यज्ञ तिनको भी उत्पन्न किया ॥ २२ ॥ फिर (अग्निवायु०) यज्ञ कर्म की सिद्धि के लिये अग्नि और वायु तथा रवि इनके द्वारा ऋक् और यजुः तथा साम इन तीनों वेदोक्त जो कर्म उनको (दुदोह) अर्थात् तिससे प्रवृत्त कराया ॥२३॥ जो कहो कि (दुह धातु०) प्रपूर्ण अर्थ में है फिर तिसका प्रवृत्त कराना यह अर्थ कैसे होसकता है ? सो ध्यान देकर श्रवण कीजिये कि (अनेकार्था अपि धातवो भवन्ति इति महाभाष्ये अ० १ पा० २ आ० १) अनेक अर्थवाले भी धातु

होते हैं ऐसे महाभाष्य में श्रीयुत् पतञ्जलि मुनि जी ने लिखा है इसमें अग्नि वायु सूर्य इन देवताओं के द्वारा यज्ञ कर्म की प्रवृत्ति कराई यही अर्थ होना ठीक है और नहीं। और जो स्वामी जी का ही अर्थ उत्तम माना जाय तो (वेद शब्देभ्यएवादौ) इस पद के अर्थ की संगति कैसे होगी, और जो कहो कि कुल्लुक भट्ट जी ने भी यह अर्थ नहीं किया, तो सुनिये कुल्लूक भट्ट जी के समय में कोई ऐसा विषय विद्यमान नहीं था जो कुछ विशेष निर्णय करने की आवश्यकता होती और वास्तव में तो कोई उनके अर्थ में भी न्यूनता नहीं क्योंकि जब ब्रह्मा जी ने यज्ञ रचे तब उन यज्ञों की भी परिपूर्ति कर्मों ही करके होनी थी इससे कोई दोष नहीं, क्योंकि जिस अर्थ को श्रुति प्रतिपादन करे वही अर्थ स्मृति का भी होना ठीक है और इसी विषय के पुष्ट करने वाले और भी अनेक श्रुतियों के प्रमाण हैं सो ग्रन्थ वृद्धि के भय से नहीं लिखे जैसे कि गोपथ ब्राह्मण में भी लिखा है—

सभूयोऽश्राम्यद्भूयोऽतप्यत । भूय आत्मानं समतपत् । स आत्मत एवत्रील्लोकान्निरमिमत । पृथिवी मन्तरिक्षं दिवमिति । सखलु पादाभ्या मेव पृथिवीन्निर मिमतोदराद्न्तरिक्षं मूर्द्धोदिवं । सतांस्त्रील्लोका नभ्यश्राम्य दभ्यतपत् । तेभ्यः श्रांतेभ्यस्तप्तेभ्यः संतप्तेभ्य स्त्रीन्देवान्निर मिमताग्निं वायुमादित्यमिति । सखलु पृथिव्या एवाग्निं निर्मिमताऽन्तरिक्षा द्वायुंदिव आदित्यम् । सतांस्त्री न्देवा नभ्यश्राम्य दभ्यतपत् । समतपत् । तेभ्यः श्रांतेभ्य स्तप्तेभ्यः संतप्तेभ्य स्त्रीन्वेदान्निरमिमत । ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदमिति । गोप० पू० भा० प्र० १ प्रा० ६ ॥

भाषार्थ

(सभूयो०) सो प्रजापति फिर श्रान्त चित्त होकर अपर्य्यालोचनात्मक तप करते २ फिर अच्छे प्रकार से आलोचनात्मक तप करके (सआत्मत-एव०) सो अपने आत्मा ही से तीन लोकों को रचा (पृथिवी मन्तरिक्षं दिव मिति) एक पृथ्वी लोक, दूसरा अन्तरिक्ष लोक, तीसरा दिवं अर्थात् स्वर्गलोक को सो ये लोक कहां से रचे सो कहते हैं कि (सपादाभ्यामेव पृथिवीं निरमि-

मत) सो अपने दोनों पादों अर्थात् पार्श्वों से पृथिवी को रचा, और (उदरादन्त रिक्षं) अपने उदर अर्थात् पेट से अन्तरिक्ष को, और (मूर्द्ध्नो दिवम्) अपने मस्तक से स्वर्ग लोक को रचा (सतांल्लोकानभ्यश्राम्यदभ्यतपत्) सो प्रजापति तिन तीनों लोकों को श्रान्त और पर्य्यालोचनात्मक तप कराके (तेभ्यः श्रान्तेभ्यःस्तप्तेभ्यः सन्तप्तेभ्यस्त्रीन्देवान्०) फिर उन तीनों लोकों को श्रान्त और पर्य्यालोचनात्मक तप करने से अच्छे प्रकार पर्य्यालोचनात्मक तप करने से तीन देवताओं को उत्पन्न किया सो उनको नाम मात्र से कहते हैं कि (अग्निं वायुमादित्यमिति) एक अग्नि, दूसरा वायु, तीसरा आदित्य इति। सो अब इन तीनों देवताओं की उत्पत्ति दिखाते हैं कि (सखलु पृथिव्याएवाग्निं निरमिमताऽन्तरिक्षा द्वायुं दिव आदित्यमिति) सो प्रजापति खलु निश्चय करके पृथिवी से ही अग्नि को, और अन्तरिक्ष से वायु को, और स्वर्ग से आदित्य को उत्पन्न करतेभये। फिर (सतांस्त्रीन्देवानभ्यश्राम्यदभ्यतपत् समतपत्) सो प्रजापति तिन तीनों देवताओं को श्रांत और पर्य्यालोचनात्मक तप कराकर फिर अच्छे प्रकार से पर्य्यालोचन करके प्रजापति ने (तेभ्यः श्रान्तेभ्य स्त्रीन्वेदान्निर मिमत) तिनसे श्रान्त और पर्य्यालोचन और फिर अच्छे प्रकार से तप कराकर तीनों वेदों को उत्पन्न किया (ऋग्वेदं, यजुर्वेदं, सामवेदमिति) एक ऋग्वेद और दूसरे यजुर्वेद तथा तीसरे सामवेद को उत्पन्न किया, अर्थात् इन तीनों देवताओं से तीनों वेदोक्त यज्ञादि कर्मों को इस संसार में प्रगट कराया इति।

अब संपूर्ण विद्वज्जन तथा सज्जन पुरुष और आर्य्य समाजस्थ महाशयों से प्रार्थना है कि अच्छे प्रकार से ध्यान देकर विचार कर देखें कि जब संपूर्ण देवताओं से पहिले परमात्मा ने ब्रह्मा जी को ही उत्पन्न किया, और तदनन्तर ब्रह्मा जी ने तीनों लोक और अग्न्यादि तीनों देवताओं को उत्पन्न किया और फिर उन्हीं अग्न्यादि तीनों देवताओं से ऋग्वादि तीनों वेदोक्त यज्ञादि कर्मों की प्रवृत्ति इस संसार में कराई, क्योंकि (निरममत) इस क्रिया का प्रजापति ही एक कर्ता है अग्न्यादिक नहीं फिर स्वामी जी का लिखना कैसे सत्य हो सकता है ? कभी नहीं।

इससे यही निश्चय करना चाहिये कि संपूर्ण देवताओं से पहिले ईश्वर ने ब्रह्मा जी को ही केवल उत्पन्न किया, और उन्हीं के हृदय में ईश्वर ने ऋग्वादि

वेदों के बोध का प्रदान किया, तदनन्तर ब्रह्मा जी ने अग्न्यादि देवताओं के द्वारा ऋग्वादि वेदोक्त यज्ञादि कर्मों की प्रवृत्ति इस संसार में कराई इति शम्।

ओ३म्

ईशानः सर्व विद्यानामीश्वरः सर्व भूतानां ब्रह्माधिपति-ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवोमेअस्तु सदाशिवोम् ॥ तै० आ०प्र०१०अनु०४७ मं०१ ॥ ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भाषार्थ

(ईश्वरः सर्वविद्यानां) जो कि परमेश्वर संपूर्ण जो वेदशास्त्रादि विद्याओं और चौसठ संख्यक जो कलारूपी विद्याओं का (ईशानः) अर्थात् नियामक है। तथा (ईश्वरः सर्वभूतानां) संपूर्ण भूत प्राणियों का ईश्वर अर्थात् नियामक है और (ब्रह्माधिपतिः) ब्रह्मा जो ऋग्वादि वेद तिन को सब से अधिक पालना करता है। तथा (ब्रह्मणोऽधिपतिः) ब्रह्मा जी का भी अधिपति अर्थात् पालक है ऐसा जो है (ब्रह्म) अर्थात् सच्चिदानन्द परमेश्वर सो (आ) सर्व ओर से (मे) मेरे को (शिवः) अर्थात् कल्याणकारी (अस्तु) हो। और (सदाशिवोम्) सदा अर्थात् तीनों काल में शिव कल्याणकारी हों, (ओम्) तब हमारा यह संपूर्ण अभीष्ट सिद्ध होगा, (ओ३म् शान्तिः ३) हे ओम्कार स्वरूप परमेश्वर हम संपूर्ण सनातन धर्म पालक पुरुषों के आध्यात्मक अधिभौतिक, अधिदैविक जो यह तीन प्रकार के ताप हैं तिनको शान्त कीजिये।

शम्

रसाब्धाङ्केन्दौ सच्छुचिसित दशम्यां विधुदिने। मुदेप्रला र्य्याणां श्रुतिपथजुषां नव्यविदुषाम्। बरेल्यां या शाला विलसति बिहारी पुरवरेऽथतस्यांग्रन्थोऽयङ्कृतइति मह-ब्रह्म कुशलैः ॥ ओम्

इति श्री मच्छ्रीमहान्त नारायण दासोदासीन वर्य शिष्येण
श्री महांत ब्रह्म कुशलो दासीनेन विरचित
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकेन्दौ प्रथमोऽध्यायः
समाप्तिङ्गतः
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

शुद्धाशुद्ध पत्र

——oo——

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	४	विद्वजन	विद्वज्जन
१	६	भूतिभुति लक्षितो	भूतिभू तिलक्षितो
१	२७	भूति भूतिलक्षित:	” ”
२	नोट	प्रतियाद्यस्य	प्रतिपाद्यस्य
”	”	सर्वेषांमपि	सर्वेषामपि
४	४	छोगा	छोगी
१०	१०	नमित् गर्भं	तमित् गर्भं
”	”	तिस ही गर्भं कों	तिस प्राप्त गर्भं को
११	३	अर्थात् कमल	अर्थात् नाभि कमल
”	२१	व्युष्टी:	व्युष्ठी:
१२	८	तद्ण्डमभवद्धैमं	तद्ण्डमभवद्धैमं
१३	१	धियोरुद्रो	धिपोरुद्रो
”	१६	(शुभयास्मस्मृत्या)	(शुभयास्मृत्या)
”	२४	(पुर्वं)	(पर्वं)
”	२५	तस्मै	तस्मै
१४	१२	आग्नेयी	आग्नेयी
”	१८	(श्वेताश्वतरोषनिषद)	(श्वेताश्वतरोपनिषद्)
१५	४	दैवता	देवता
”	२५	नामी	नाम्नी
१८	१८	पुज्यात्सर्वो यास्या	पूज्यात्सर्वोपास्या
१८	२३	प्रपा० ॥	प्रपा० २
२२	२१	अजापत	अजायत
”	२५	क०	कं०
२३	१५	पृवृत्त	प्रवृत्त
”	२३	सतपथ	शतपथ
”	२७	एज्ञादि	यज्ञादि
”	२८	इमने अर्थ	इमने जो अर्थ
२४	२७	सहिता	संहिता
२५, २६	२१, १६	पृवृत्ति	प्रवृत्ति
२८	१	सानातनं	सनातनम्
२८	२	ऋग्ययु:	ऋग्यजु:
२८	८	वृथक्	पृथक्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	
२८	६	निर्मिते	
२८	२५	तिससे	
२८	२६	दु धातु	
२९	१४	चीह्लीकान्	चाँ ह्लीकान्
२९	१६	मुर्द्धो	मूर्द्ध्नो
२९	१६	स्वील्लोकान्	स्वाँल्लोकान्
२९	२१	नप्तेभ्य	तप्तेभ्य
२९	२४	अपर्थ्यालो	पर्थ्यालो
३०	१६	ऋग्वेद, यजुर्वेद	ए ऋग्वेदं यजुर्वेदं
३०	२५	निरममत	निरमिमत
३१	११	ब्रह्मा	ब्रह्म

गुरु विरजानन्द दण्डी
पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक 208
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विज्ञापनम्

——:०००:——

सम्पूर्ण महाशयों को विदित हो कि जैसा यह (वेदोत्पत्ति विषय) चारों वेदों की संहिता और चारों ब्राह्मणादि सच्छास्त्रों के प्रमाण युक्त रचा गया है, इसी प्रकार के सोलह १६ विषयों में इस (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकेन्दु) नामक ग्रन्थ की परिपूर्ति होगी। जिन महाशयों को इस ग्रन्थ के शीघ्र छपने की उत्कण्ठा हो उनको चाहिये कि २॥) रुपये छपने से पहिले हमारे पास भेजदें उनको इतने ही मूल्य में यह संपूर्ण ग्रन्थ मिलेगा। और अन्य लोगों को इस ग्रन्थ का मूल्य ४॥) रुपये देना होगा। और मनीआर्डर तथा डाक महसूल दोनों अवस्था में अलहदा देना होगा। जिन महाशयों को अपेक्षित हो ग्रन्थकर्ता के पास वा बाबू त्रिवेणी सहाय वकील अदालत दीवानी बरेली के पास अथवा मुन्शी तेजराय मुदर्रिस हाई स्कूल बरेली के पास मूल्य तथा डाक महसूल मनीआर्डर द्वारा भेजकर मंगालें, और गाहकों को चाहिये कि अपना नाम और ठिकाना साफ़ साफ़ लिखकर भेजें कि जिससे पुस्तक भेजने में सुगमता रहे। शम्।

श्रीमहान्त ब्रह्मभूमलोदासीन
धर्मशाला बिहारीपुर
शहर बांसबरेली

☞ जिस पुस्तक पर ग्रन्थकर्त्ता की मुहर न होगी वह चोरी का समझा जायगा, इससे बिना मुहर का ग्रन्थ कोई न लें।